The Academia
(A Multidisciplinary Peer-Reviewed Research Journal)
Volume: 04, Issue: I, Pages: 62-70, Year: 2026

ISSN- 2583-8830

पुराणों और स्मृतियों में शिक्षा एवं ज्ञान की अवधारणा: एक दार्शनिक विश्लेषण

विनोद कुमार[1]
1. शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

Received: 02 April 2026 **Accepted: 30 May 2026** **Published: 20 June 2026**

सारांश

पुराणों और स्मृतियों में शिक्षा एवं ज्ञान की अवधारणा भारतीय संस्कृति और दर्शन की आधारशिला रही है। इन ग्रन्थों में शिक्षा को केवल बौद्धिक विकास का साधन न मानकर नैतिकता, आत्मसंयम, धर्मपालन तथा मोक्ष–प्राप्ति का माध्यम माना गया है। पुराणों ने वेदों के गूढ़ ज्ञान को सरल एवं लोकहितकारी रूप में प्रस्तुत कर समाज को सांस्कृतिक दिशा प्रदान की, जबकि स्मृतियों एवं सूत्र–साहित्य में शिक्षा पद्धति, गुरु–शिष्य परम्परा, सामाजिक कर्तव्यों तथा जीवन मूल्यों का विस्तृत निरूपण मिलता है। इस काल में वेदाङ्ग, दर्शन, ज्योतिष, गणित, व्याकरण तथा अन्य व्यावहारिक विद्याओं का भी पर्याप्त विकास हुआ। अतः प्राचीन भारतीय शिक्षा–दर्शन का उद्देश्य व्यक्ति के सर्वांगीण विकास तथा समाज और संस्कृति के संरक्षण से सम्बद्ध था।

मुख्यशब्द: पुराण, स्मृतियाँ, शिक्षा, ज्ञान, भारतीय शिक्षा–दर्शन, गुरु–शिष्य परम्परा, वेदाङ्ग, सूत्र–साहित्य, पुरुषार्थचतुष्टय, मोक्ष, सांस्कृतिक मूल्य,प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा,नैतिक शिक्षादर्शन–शास्त्र

1. भूमिका

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम एवं समृद्ध संस्कृतियों में से एक है, जिसकी आधारशिला ज्ञान, शिक्षा तथा आध्यात्मिक चिंतन पर आधारित रही है। भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा को केवल विद्या अर्जन का माध्यम न मानकर चरित्र–निर्माण, नैतिकता, आत्मसंयम तथा मोक्ष–प्राप्ति का साधन माना गया। वेद, उपनिषद्, पुराण एवं स्मृतियाँ भारतीय चिंतन की अमूल्य धरोहर हैं, जिनमें मानव जीवन के सामाजिक, धार्मिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक पक्षों का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है।[1] विशेषतः पुराणों एवं स्मृतियों ने वेदों के गूढ़ ज्ञान को सरल एवं लोकबोधगम्य रूप में प्रस्तुत कर सामान्य जनमानस को सांस्कृतिक एवं नैतिक दिशा प्रदान की। पुराणों में धर्म, दर्शन, इतिहास, समाज, राजनीति एवं लोकाचार का व्यापक वर्णन मिलता है, जबकि स्मृतियों में सामाजिक व्यवस्था, आचार–संहिता, संस्कार, गुरु–शिष्य संबंध तथा शिक्षा–पद्धति का व्यवस्थित निरूपण किया गया है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति तथा अष्टादश पुराण भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख स्रोत हैं, जिनमें शिक्षा को आत्मोन्नति एवं सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा गया है। प्राचीन भारतीय शिक्षा–पद्धति का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास तथा नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान था। वर्तमान समय में शिक्षा का स्वरूप अधिकतर भौतिक एवं व्यावसायिक होता जा रहा है, जिससे नैतिक मूल्यों एवं सांस्कृतिक चेतना का ह्रास दिखाई देता है। ऐसी स्थिति में पुराणों एवं स्मृतियों में निहित शिक्षा एवं ज्ञान की अवधारणाओं का अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। ये ग्रन्थ न केवल भारतीय संस्कृति के दर्पण हैं, बल्कि आज भी मूल्यपरक शिक्षा, सामाजिक समरसता तथा नैतिक जीवन के लिए प्रेरणास्रोत हैं।

भारतीय ज्ञान परम्परा में पुराण एवं स्मृति–साहित्य का विशेष महत्व रहा है। इन ग्रंथों में शिक्षा, ज्ञान, नैतिकता एवं मानवीय मूल्यों से संबंधित अनेक अवधारणाएँ प्राप्त होती हैं। प्रस्तुत विषय के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किए हैं, जिनके आधार पर इस शोध का वैचारिक स्वरूप निर्मित होता है।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने भारतीय दर्शन को मूलतः आध्यात्मिक एवं नैतिक ज्ञान की परम्परा माना है। उनके अनुसार भारतीय शिक्षा का लक्ष्य केवल लौकिक ज्ञान अर्जन न होकर आत्मसाक्षात्कार एवं व्यक्तित्व का समग्र विकास है।[2]

पांडुरंग वामन काणे (P- V- Kane) ने अपनी प्रसिद्ध कृति History of Dharmasastra में धर्मशास्त्रों एवं स्मृतियों की सामाजिक, नैतिक तथा शैक्षिक व्यवस्था का गहन विश्लेषण किया है। काणे के अनुसार स्मृतियाँ भारतीय समाज के आचार, धर्म, शिक्षा तथा ज्ञान–व्यवस्था की आधारशिला हैं।[3]

© 2026 The Academia

The Academia
(A Multidisciplinary Peer-Reviewed Research Journal)
Volume: 04, Issue: I, Pages: 62-70, Year: 2026
ISSN- 2583-8830

अनन्त सदाशिव आल्टेकर (A. S. Altekar) ने Education in Ancient India में प्राचीन भारतीय शिक्षा–पद्धति, गुरु–शिष्य परम्परा, स्त्री शिक्षा, आश्रम व्यवस्था तथा नैतिक शिक्षा के स्वरूप को विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया है। उनके अनुसार भारतीय शिक्षा का मूल उद्देश्य चरित्र निर्माण एवं सांस्कृतिक चेतना का विकास था।[4]

आर. सी. मजूमदार ने प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं इतिहास के अध्ययन में पुराणों को भारतीय सांस्कृतिक जीवन का महत्त्वपूर्ण स्रोत माना है। उनके मतानुसार पुराणों में लोकशिक्षा, धर्म, नीति एवं नैतिक मूल्यों का व्यवस्थित निरूपण मिलता है।[5]

एस. एन. दासगुप्ता ने भारतीय दर्शन के इतिहास का विवेचन करते हुए ज्ञान को भारतीय चिंतन का केन्द्रीय तत्व माना है। उनके अनुसार भारतीय परम्परा में ज्ञान का स्वरूप केवल बौद्धिक न होकर आध्यात्मिक एवं अनुभवात्मक भी है।[6]

उपर्युक्त विद्वानों के अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि पुराण एवं स्मृतियाँ भारतीय शिक्षा–दर्शन तथा ज्ञान–परम्परा के महत्त्वपूर्ण आधार हैं। तथापि अधिकांश अध्ययनों में शिक्षा एवं ज्ञान की अवधारणा का समन्वित दार्शनिक विश्लेषण अपेक्षाकृत कम मिलता है। प्रस्तुत शोध पत्र इसी शोध–अंतराल को दृष्टिगत रखते हुए पुराणों एवं स्मृतियों में निहित शिक्षा एवं ज्ञान की अवधारणा का दार्शनिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

2. पुराणों में शिक्षा एवं ज्ञान की अवधारणा–

भारतीय पुराण साहित्य की संरचना एवं स्वरूप को समझने के लिए 'पुराण–पञ्चलक्षण' की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। प्राचीन आचार्यों ने पुराणों की विषयवस्तु एवं उनके दार्शनिक आधार को स्पष्ट करने के उद्देश्य से ' पञ्चलक्षणम् ' शब्द का प्रयोग किया है। अमरकोश तथा अनेक प्राचीन पुराणों में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि जिन ग्रन्थों में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित का निरूपण हो, वही वास्तविक अर्थ में 'पुराण' कहलाते हैं– **सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।**

वंश्यानुचरितं चौव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥[7]

अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति, सृष्टि का पुनर्गठन अथवा प्रलय, देवों एवं राजाओं की वंश–परम्परा, मन्वन्तरों का वर्णन तथा महान व्यक्तियों के चरित्रों का विवेचन ये पाँच तत्त्व पुराणों के मूल लक्षण माने गए हैं। यह तथ्य स्पष्ट करता है कि पुराण केवल धार्मिक आख्यान नहीं हैं, बल्कि उनमें ब्रह्माण्डीय व्यवस्था, ऐतिहासिक चेतना, सामाजिक संरचना तथा दार्शनिक चिन्तन का समन्वित स्वरूप विद्यमान है। इसी प्रकार 'प्रतिसर्ग' का तात्पर्य सृष्टि के विलय तथा पुनः सृजन से है। विष्णु पुराण में इसके लिए 'प्रतिसंचार' शब्द का प्रयोग हुआ है[8], जो सृष्टि के पुनरावर्तन अथवा पुनर्गठन का द्योतक है। भागवत पुराण में इसे 'संस्था' कहा गया है तथा प्रलय के चार स्वरूपों नैमित्तिक, प्राकृत, नित्य एवं आत्यन्तिक का उल्लेख मिलता है।[9] इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय पुराणकार सृष्टि को स्थिर न मानकर निरन्तर परिवर्तनशील एवं चक्रीय प्रक्रिया के रूप में देखते थे। यह दृष्टि भारतीय दर्शन की उस गहन अवधारणा को अभिव्यक्त करती है, जिसमें सृष्टि, स्थिति एवं संहार को ब्रह्माण्डीय नियम का स्वाभाविक अंग माना गया है। इस प्रकार पुराणों का पञ्चलक्षण न केवल उनके साहित्यिक स्वरूप को स्पष्ट करता है, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा की दार्शनिक गहराई एवं वैज्ञानिक दृष्टि को भी अभिव्यक्त करता है। पुराणों के पञ्चलक्षणों में 'वंश' एवं 'मन्वन्तर' की अवधारणाएँ विशेष रूप से ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा दार्शनिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। 'वंश' का अभिप्राय केवल राजाओं की वंशावली से नहीं, बल्कि देवताओं, ऋषियों, कुलपतियों तथा विशिष्ट वंश–परम्पराओं के क्रमबद्ध विवरण से है। पुराणों में ब्रह्मा से उत्पन्न राजाओं एवं विभिन्न वंशों की परम्परा का विस्तृत निरूपण प्राप्त होता है। इस संदर्भ में कहा गया है–

"राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः"[10]

अर्थात् ब्रह्मा से उत्पन्न राजाओं की भूत, वर्तमान तथा भविष्यकालीन परम्परा को 'वंश' कहा जाता है। पुराणों में वर्णित वंशावलियाँ केवल राजकीय इतिहास का परिचय नहीं देतीं, बल्कि वे भारतीय समाज की सांस्कृतिक निरन्तरता, धार्मिक परम्पराओं तथा सामाजिक संरचना को भी अभिव्यक्त करती हैं। इन वंशों के माध्यम से तत्कालीन समाज की राजनीतिक व्यवस्था, धार्मिक मान्यताएँ तथा नैतिक आदर्शों का ज्ञान प्राप्त होता है। यही कारण है कि पुराणों को भारतीय ऐतिहासिक चेतना का महत्वपूर्ण स्रोत माना गया है। इसी प्रकार 'मन्वन्तर' की अवधारणा पुराणों की काल–दृष्टि एवं ब्रह्माण्डीय चिन्तन

© 2026 The Academia

The Academia
(A Multidisciplinary Peer-Reviewed Research Journal)
Volume: 04, Issue: I, Pages: 62-70, Year: 2026
ISSN- 2583-8830

को स्पष्ट करती है। भागवत पुराण के अनुसार मनु, देवगण, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि तथा भगवान के अंशावतारकृइन छह तत्त्वों से युक्त कालखंड को 'मन्वन्तर' कहा जाता है–

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ।
ऋषयोऽंशावताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥[11]

इस प्रकार मन्वन्तर केवल समय की गणना मात्र नहीं है, बल्कि यह सृष्टि–व्यवस्था, धर्म–संरक्षण तथा मानव सभ्यता के क्रमिक विकास का द्योतक है। पुराणों में चौदह मन्वन्तरों का उल्लेख प्राप्त होता है–स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि तथा इन्द्रसावर्णि। इनमें से छह मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं तथा वर्तमान काल को सातवाँ 'वैवस्वत मन्वन्तर' माना गया है। मन्वन्तरों की यह अवधारणा भारतीय चिंतन की उस गहन दार्शनिक दृष्टि को प्रकट करती है, जिसमें समय को रैखिक न मानकर चक्रीय स्वरूप में देखा गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि पुराण केवल धार्मिक आख्यानों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि उनमें ब्रह्माण्ड, समय, इतिहास एवं मानव जीवन की व्यापक दार्शनिक व्याख्या भी निहित है। इस प्रकार 'वंश' एवं 'मन्वन्तर' की अवधारणाएँ भारतीय ज्ञान परंपरा में इतिहास बोध, सांस्कृतिक निरन्तरता तथा दार्शनिक चेतना के महत्वपूर्ण आधार के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

पुराणों के पञ्चलक्षणों में 'वंशानुचरित' का विशेष महत्व है, क्योंकि इसके माध्यम से केवल वंश–परम्परा का उल्लेख ही नहीं, बल्कि उन वंशों में उत्पन्न महान राजाओं, ऋषियों तथा विशिष्ट व्यक्तित्वों के चरित्र, कर्तृत्व एवं आदर्शों का विस्तृत वर्णन भी प्रस्तुत किया जाता है। इस संदर्भ में कहा गया है वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये।[12] अर्थात् जिन वंशधरों के आचरण, चरित्र तथा जीवन–वृत्त का वर्णन किया जाए, वही 'वंशानुचरित' कहलाता है। पुराणों में वर्णित वंशानुचरित भारतीय समाज की नैतिक एवं सांस्कृतिक चेतना के संवाहक हैं। इनमें केवल राजाओं का इतिहास प्रस्तुत नहीं किया गया, बल्कि आदर्श जीवन–मूल्यों, धर्मपालन, नीति, लोककल्याण तथा कर्तव्यनिष्ठा की स्थापना भी की गई है। इस प्रकार वंशानुचरित भारतीय परम्परा में इतिहास, नीति एवं लोकशिक्षा का महत्वपूर्ण माध्यम बनकर उभरता है। पुराणों की विषयवस्तु को लेकर भारतीय आचार्यों ने समय–समय पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किया है। जहाँ परम्परागत रूप से 'पुराणं पञ्चलक्षणम्' की अवधारणा स्वीकार की गई, वहीं राजनीति एवं धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण से इसकी नवीन व्याख्या भी प्रस्तुत की गई। कौटिल्य के अर्थशास्त्र की 'जयमंगला' टीका में उद्धृत एक श्लोक में पुराणों के पञ्चलक्षणों को भिन्न रूप में व्यक्त किया गया है–

सृष्टि–प्रवृत्ति–संहार–धर्म–मोक्षप्रयोजनम् ।
ब्रह्मभिर्विविधैः प्रोक्तं पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

इस परिभाषा में सृष्टि, प्रवृत्ति, संहार, धर्म तथा मोक्ष को पुराणों के प्रमुख लक्षणों के रूप में स्वीकार किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि पुराण केवल ऐतिहासिक या पौराणिक आख्यान नहीं हैं, बल्कि वे धर्म, जीवन–दर्शन एवं मोक्षमार्ग के गहन दार्शनिक प्रतिपादक भी हैं।

पुराणों के दशलक्षणों में 'अपाश्रय' की अवधारणा अत्यंत गूढ़ दार्शनिक महत्व रखती है। भारतीय दार्शनिक परम्परा में जीव की तीन अवस्थाएँ जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति स्वीकार की गई हैं। इन अवस्थाओं में चौतन्य क्रमशः 'विश्व', 'तैजस' एवं 'प्राज्ञ' नामों से अभिहित होता है। इन समस्त अवस्थाओं में जो अखण्ड, नित्य एवं अविच्छिन्न सत्ता विद्यमान रहती है, वही परम तत्त्व 'अपाश्रय' कहलाता है। सूत सुमन्त्र ने महाराज दशरथ को पहले ही बता दिया था कि किस प्रकार उन्हें पुत्र प्राप्त होने वाले हैं। यह बात सुमन्त को पुराणों की कथा सुनकर ही ज्ञात हुई थी। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार पुराणों में भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालों की घटनाओं का वर्णन मिलता है।[13] अनेक पुराणों ने जहाँ धार्मिक आडम्बरों एवं कर्मकाण्डों की प्रशंसा की है, वहीं कुछ पुराणों में उनकी आलोचनात्मक समीक्षा भी दृष्टिगत होती है। उदाहरणस्वरूप श्राद्ध एवं तर्पण सम्बन्धी मान्यताओं पर पद्मपुराण में तार्किक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है, जो यह संकेत करता है कि भारतीय पुराणकार केवल अंधानुकरण के पक्षधर नहीं थे, बल्कि वे विवेकपूर्ण चिन्तन को भी महत्व देते थे। यह दृष्टिकोण पुराणों की बौद्धिक एवं दार्शनिक उदारता का परिचायक है।

पुराणों में प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति विशेष संवेदनशीलता भी परिलक्षित होती है। इनमें गंगा, यमुना तथा अन्य पवित्र नदियों की महत्ता, तीर्थस्थलों का वर्णन तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का अत्यंत भावपूर्ण चित्रण प्राप्त होता है। गंगा के जल की पवित्रता एवं उपयोगिता को जहाँ धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया, वहीं आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी उसके

© 2026 The Academia

The Academia
(A Multidisciplinary Peer-Reviewed Research Journal)
Volume: 04, Issue: I, Pages: 62-70, Year: 2026
ISSN- 2583-8830

विशिष्ट गुणों को स्वीकार करता है। इसी प्रकार सूर्य को जीवनदाता एवं समस्त सृष्टि के आधार के रूप में चित्रित किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि पुराणों में प्रकृति, धर्म और मानव जीवन के मध्य गहन समन्वय की भावना विद्यमान थी। पुराणों में वर्णित तीर्थ, आचार–विचार, इतिहास, धर्म तथा मानवीय व्यवहार सम्बन्धी शिक्षाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि प्राचीन भारतीय शिक्षा–पद्धति का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि मनुष्य के अन्तःकरण का परिष्कार एवं उसके व्यक्तित्व का समग्र विकास था। पुराणों में तीर्थस्थलों का वर्णन केवल धार्मिक आस्था का विषय नहीं है, बल्कि वह भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना का भी द्योतक है। तीर्थ–वर्णनों के माध्यम से तत्कालीन समाज की प्राकृतिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि पुराणों में ज्ञान की अवधारणा बहुआयामी थी, जिसमें धर्म के साथ–साथ भूगोल, इतिहास तथा समाजशास्त्रीय दृष्टि का भी समावेश था। इस प्रकार पुराण लोकजीवन के विविध पक्षों को शिक्षा का माध्यम बनाकर प्रस्तुत करते हैं। पुराणों में नैतिक शिक्षा को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना पुराणों की मूल चेतना रही है। इसी आदर्श को व्यक्त करते हुए कहा गया है –

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

यहाँ परोपकार को पुण्य तथा परपीड़ा को पाप कहा गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि पुराणों की शिक्षा–दृष्टि मानवीय संवेदनाओं एवं लोककल्याण पर आधारित थी। पुराणों ने मानव को सत्य, अहिंसा, दया, संयम एवं सदाचार का पालन करने की प्रेरणा दी तथा यह प्रतिपादित किया कि मनुष्य अपने आचरण से ही सुख–दुःख, स्वर्ग–नरक तथा कल्याण–अकल्याण का निर्माण करता है।[14]

पुराणों में वर्णित शिक्षा–दृष्टि का एक महत्वपूर्ण पक्ष आत्मशुद्धि एवं मानसिक अनुशासन है। आत्मा एवं मन की पवित्रता को जीवन के वास्तविक कल्याण का आधार माना गया है। पुराणों के अनुसार सदाचारी, जितेन्द्रिय एवं संयमी व्यक्ति ही वास्तविक सुख एवं मोक्ष का अधिकारी बनता है।[15] इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य केवल बाह्य ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि व्यक्ति के भीतर नैतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का विकास करना था। पुराणों में 'दम', 'संयम', 'नियम' एवं 'अस्तेय' जैसे मूल्यों का प्रतिपादन मानव जीवन को अनुशासित एवं संतुलित बनाने के लिए किया गया। विशेषतः पद्मपुराण में यह उल्लेख मिलता है कि पराये धन एवं परायी स्त्री की इच्छा न करना ही वास्तविक 'अस्तेय' है तथा इन्द्रियों को विषयों से नियंत्रित रखना ही श्रेष्ठ 'दम' है। यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि पुराणों की शिक्षा प्रणाली मानव के आन्तरिक परिष्कार पर आधारित थी।[16] पुराणों में गुरु–शिष्य सम्बन्धों का भी अत्यंत आदर्श एवं व्यावहारिक स्वरूप मिलता है। गुरूकुल परम्परा में शिक्षा का उद्देश्य केवल पाठ्य ज्ञान देना नहीं था, बल्कि गुरु की सेवा, अनुशासन, तप, साधना तथा जीवन–मूल्यों के माध्यम से व्यक्तित्व का निर्माण करना था। यही कारण है कि सीमित संसाधनों के होते हुए भी प्राचीन शिक्षार्थी गहन अध्ययन एवं मनन द्वारा विविध विद्याओं में पारंगत हो जाते थे। इससे स्पष्ट होता है कि पुराणों की शिक्षा–दृष्टि में व्यवहारिकता, अनुशासन तथा आत्मसंयम को विशेष महत्व प्राप्त था।

पुराणों में दैनिक जीवन से सम्बन्धित अनेक शिक्षाएँ भी प्राप्त होती हैं, जो धार्मिक होने के साथ–साथ वैज्ञानिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं। स्वच्छता, भोजन से पूर्व हस्त–प्रक्षालन, दन्त एवं केशों की शुद्धि आदि के निर्देश इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि पुराणों में स्वास्थ्य एवं जीवनोपयोगी ज्ञान का भी समावेश था। इस प्रकार पुराणों की ज्ञान–परम्परा केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से भी समृद्ध थी।[17] वेदों एवं पुराणों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि पुराणों ने वैदिक ज्ञान को अधिक सरल एवं लोकबोधगम्य रूप में प्रस्तुत किया। वेदों में वर्णित सृष्टि–विज्ञान, त्रयीविद्या तथा ब्रह्माण्डीय अवधारणाएँ पुराणों में कथात्मक एवं शिक्षाप्रद शैली में प्रतिपादित हुई हैं।

पुराणों में शिक्षा एवं ज्ञान की अवधारणा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि उन्होंने वैदिक ज्ञान परंपरा को न केवल संरक्षित किया, बल्कि उसे लोकग्राह्य एवं व्यावहारिक स्वरूप भी प्रदान किया। वेदों के त्रिगुणात्मक स्वरूप सत्त्व, रजस् तथा तमस् को पुराणों ने पूर्ववत् स्वीकार करते[18] हुए उसे दार्शनिक एवं नैतिक शिक्षा के साथ जोड़ा। इससे स्पष्ट होता है कि पुराणकारों का उद्देश्य केवल धार्मिक आख्यान प्रस्तुत करना नहीं था, बल्कि मानव जीवन के मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक पक्षों का सम्यक् विकास करना भी था। पुराणों का प्रचार–प्रसार मुख्यतः गुरु–शिष्य परम्परा के माध्यम से हुआ। प्रारम्भ में 'पुराण–संहिता' के रूप में विद्यमान इस ज्ञान–परम्परा का श्रेय वेदव्यास को दिया जाता है।[19] पुराणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं हैं, बल्कि उनमें वैदिक कथाओं, जनश्रुतियों, सामाजिक व्यवस्था, आचार–विचार, राजवंशों तथा नैतिक मूल्यों का समन्वित स्वरूप विद्यमान है। विशेषतः पद्मपुराण में 'सदाचार' को मानव जीवन का मूल आधार माना गया है।[20] पुराणों के अनुसार सदाचार से युक्त व्यक्ति ही सुख, शान्ति एवं मोक्ष का अधिकारी बनता है, जबकि

© 2026 The Academia

The Academia
(A Multidisciplinary Peer-Reviewed Research Journal)
Volume: 04, Issue: I, Pages: 62-70, Year: 2026
ISSN- 2583-8830

दुराचार मनुष्य को दुःख एवं पतन की ओर ले जाता है।[21] इससे स्पष्ट होता है कि पुराणों में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि मनुष्य को नैतिक एवं आदर्श जीवन के लिए प्रेरित करना था।

पुराणों में सांख्य एवं दार्शनिक चिंतन के माध्यम से आत्मज्ञान एवं समत्व की शिक्षा भी प्रदान की गई है। कश्यप द्वारा अदिति को दिया गया उपदेश इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसमें सांसारिक संबंधों की अनित्यता तथा जीवात्मा की शाश्वत सत्ता का प्रतिपादन किया गया है।[22] इस प्रकार पुराणों में शिक्षा का स्वरूप आत्मबोध एवं आध्यात्मिक चेतना से सम्बद्ध दिखाई देता है। यहाँ ज्ञान का सर्वोच्च उद्देश्य मनुष्य को आत्मा एवं परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का बोध कराना है। कर्मवाद की अवधारणा भी पुराणों की शिक्षा–दृष्टि का प्रमुख आधार है। पुराणों में यह प्रतिपादित किया गया है कि मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार ही फल प्राप्त करता है। कृषक द्वारा बोए गए बीज एवं प्राप्त होने वाली फसल का उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया गया है कि जैसे बीज वैसी ही फसल प्राप्त होती है, उसी प्रकार मनुष्य को अपने कर्मों का फल वर्तमान एवं आगामी जन्मों में भोगना पड़ता है। यह शिक्षा मनुष्य को उत्तरदायित्व, नैतिकता एवं सत्कर्म की ओर प्रेरित करती है।[23]

पुराणों में सामाजिक समता एवं मानवीय एकता की भावना को भी अत्यंत महत्व दिया गया है। जाति–पाँति एवं ऊँच–नीच के भेदभाव का खण्डन करते हुए पुराणों ने समस्त प्राणियों को एक ही परम सत्ता की अभिव्यक्ति माना है।[24] पंचमहाभूतों से निर्मित मानव शरीर एवं विभिन्न पात्रों में प्रतिबिम्बित एक ही चन्द्रमा का उदाहरण देकर यह प्रतिपादित किया गया है कि परमात्मा एक होते हुए भी विविध रूपों में प्रकट होता है। यह दृष्टिकोण भारतीय दर्शन की उस सार्वभौमिक चेतना को अभिव्यक्त करता है, जिसमें समस्त मानवता को एकात्म दृष्टि से देखा गया है। अहिंसा, दया, दान एवं परोपकार को पुराणों ने सर्वोच्च नैतिक मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठित किया है।[25] शिवपुराण में स्पष्ट कहा गया है कि संसार में परोपकार से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।[26] इससे यह सिद्ध होता है कि पुराणों की शिक्षा–दृष्टि केवल आध्यात्मिक मुक्ति तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह सामाजिक कल्याण एवं मानवीय संवेदनाओं के विकास पर भी आधारित थी। पद्मपुराण में वर्णित प्रलय–विवेचन के अनुसार सहस्र युगों के उपरान्त ब्रह्मा सृष्टि का संहार करते हैं[27] और परमात्मा समस्त प्राणियों को अपने भीतर धारण कर जलमग्न अवस्था में शयन करता है।[28] यह वर्णन केवल पौराणिक कल्पना नहीं, बल्कि सृष्टि के चक्र, उत्पत्ति एवं विलय के दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतीक है। पुराणकारों ने इन कथाओं के माध्यम से यह शिक्षा देने का प्रयास किया कि संसार परिवर्तनशील है तथा समस्त भौतिक अस्तित्व अन्ततः एक परम सत्ता में विलीन हो जाता है। इस प्रकार पुराणों में ज्ञान की अवधारणा केवल लौकिक जगत् तक सीमित नहीं, बल्कि ब्रह्म, आत्मा एवं सृष्टि के परम सत्य की ओर उन्मुख है।

भौगोलिक दृष्टि से भी पुराणों का योगदान उल्लेखनीय है। पुराणों में पृथ्वी के विभाजन, द्वीपों, पर्वतों, नदियों, समुद्रों तथा तीर्थस्थलों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। जम्बूद्वीप, सप्तद्वीप, चतुर्दश भुवन, कैलाश, पुष्करद्वीप, शाल्मलि द्वीप आदि का उल्लेख भारतीय भूगोल एवं सांस्कृतिक चेतना को अभिव्यक्त करता है।[29] ब्रह्मवैवर्त पुराण, स्कन्द पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण में तीर्थों, नदियों एवं भू–भागों का अत्यंत रोचक एवं विस्तृत वर्णन मिलता है। विशेष रूप से स्कन्दपुराण में जगन्नाथ मंदिर तथा नर्मदा एवं तापी जैसी नदियों से सम्बद्ध तीर्थों का वर्णन तत्कालीन धार्मिक एवं सांस्कृतिक भूगोल की जानकारी प्रदान करता है। इससे स्पष्ट होता है कि पुराणों में ज्ञान की अवधारणा केवल आध्यात्मिक न होकर भौगोलिक एवं सांस्कृतिक चेतना से भी सम्बद्ध थी। सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पुराणों का महत्व अत्यंत गहन है। पुराणों में वर्णाश्रम व्यवस्था, संस्कार, पारिवारिक सम्बन्ध, राजधर्म तथा गुरु–शिष्य सम्बन्धों का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन का साधन न मानकर चरित्र–निर्माण एवं सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा गया है। भारतीय चिंतन परम्परा में मानव जीवन के चार पुरुषार्थ–धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष स्वीकार किए गए हैं। पुराणों में इन चारों पुरुषार्थों का समन्वित विवेचन प्राप्त होता है, जिससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा–पद्धति केवल लौकिक उन्नति तक सीमित नहीं थी, बल्कि उसका अंतिम उद्देश्य मानव को आध्यात्मिक शान्ति एवं मोक्ष की ओर उन्मुख करना था। पुराणों को भारतीय जीवन का अत्यंत मूलभूत अंग माना गया है[30], क्योंकि उनमें मानव जीवन की लगभग सभी आवश्यकताओं एवं उपयोगी विषयों का समावेश प्राप्त होता है। धर्म एवं दर्शन के साथ–साथ राजनीति, समाज व्यवस्था, इतिहास, भूगोल, खगोल, ज्योतिष, आयुर्वेद तथा शिल्पशास्त्र जैसे विविध विषयों का विस्तृत विवेचन पुराणों में मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि पुराणों में ज्ञान की अवधारणा अत्यंत व्यापक एवं बहुआयामी थी। शिक्षा को यहाँ केवल एक विषय विशेष तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उसे सम्पूर्ण जीवन एवं समाज से सम्बद्ध किया गया। यही कारण है कि पुराण भारतीय समाज के सांस्कृतिक, नैतिक एवं बौद्धिक विकास के प्रमुख आधार बन गए। पुराणों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने प्राचीन वैदिक ज्ञान को सरल, रोचक एवं लोकग्राह्य रूप में प्रस्तुत किया। वेदों के गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्तों एवं आध्यात्मिक तत्त्वों को पुराणकारों ने आख्यानों, दृष्टान्तों एवं कथाओं के माध्यम से सामान्य जन तक पहुँचाया। यद्यपि अनेक स्थलों पर कल्पना एवं काव्यात्मक शैली का प्रयोग हुआ, तथापि मूल वैदिक विचारधारा एवं दार्शनिक तत्वों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

© 2026 The Academia

The Academia
(A Multidisciplinary Peer-Reviewed Research Journal)
Volume: 04, Issue: I, Pages: 62-70, Year: 2026
ISSN- 2583-8830

3. स्मृतियों में शिक्षा एवं ज्ञान की अवधारणा

वैदिक साहित्य के पश्चात् भारतीय ज्ञान परम्परा में स्मृति–साहित्य का विकास शिक्षा एवं ज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। लगभग 600 ई० पू० से 200 ई० पू० के मध्य विकसित स्मृतियों एवं धर्मसूत्रों ने वेदों और उपनिषदों के विस्तृत एवं दुरूह ज्ञान को सरल, संक्षिप्त तथा व्यवहारोपयोगी रूप प्रदान किया। इन ग्रन्थों का उद्देश्य केवल धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं था, बल्कि सामाजिक व्यवस्था, नैतिक मर्यादा तथा शिक्षा–पद्धति को व्यवस्थित करना भी था। स्मृतियों में शिक्षा को केवल बौद्धिक ज्ञानार्जन का साधन न मानकर चरित्र–निर्माण, आत्मसंयम, सदाचार एवं आध्यात्मिक उन्नति का माध्यम स्वीकार किया गया। गुरु–शिष्य परम्परा, ब्रह्मचर्य, गुरु–सेवा, वेदपाठ तथा अनुशासन को शिक्षा के अनिवार्य अंग माना गया। स्मृति–साहित्य की विशेषता उसकी संक्षिप्तता एवं सारगर्भिता है, जिसमें धर्म, समाज एवं जीवन के गूढ़ सिद्धान्तों को अत्यल्प शब्दों में व्यक्त किया गया। इन ग्रन्थों में सामाजिक जीवन, संस्कार, वर्णाश्रम व्यवस्था तथा कर्तव्य–बोध का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। साथ ही शिक्षा के अंतर्गत वेदाङ्गों शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, कल्प एवं ज्योतिष को विशेष महत्व दिया गया। गणित, ज्योतिष, चिकित्सा, भाषा–विज्ञान, अर्थशास्त्र, नृत्य, संगीत एवं शिल्पकला जैसे विषयों का भी विकास हुआ, जिससे स्पष्ट होता है कि भारतीय शिक्षा–पद्धति बहुआयामी एवं जीवनोपयोगी थी। पाणिनि का व्याकरण, पातञ्जलि का महाभाष्य तथा कौटिल्य का अर्थशास्त्र इसी युग की प्रमुख बौद्धिक उपलब्धियाँ हैं। स्मृति एवं सूत्रकालीन साहित्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता दर्शनशास्त्र का व्यापक विकास भी है। इसी काल में सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा एवं वेदान्त जैसे षड्दर्शनों का व्यवस्थित प्रतिपादन हुआ। इन दार्शनिक परम्पराओं ने आत्मसंयम, तर्क, विवेक एवं आत्मबोध पर बल दिया। दर्शन का अध्ययन केवल योग्य एवं अनुशासित विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त माना जाता था, जिससे स्पष्ट होता है कि ज्ञान–प्राप्ति के लिए नैतिक अनुशासन को आवश्यक समझा गया। इस प्रकार स्मृतियों में निहित शिक्षा–दृष्टि केवल लौकिक ज्ञान तक सीमित न होकर नैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास की समन्वित अवधारणा प्रस्तुत करती है।

3.1 शिक्षण व्यवस्था

पुराणों एवं स्मृतियों में वर्णित शिक्षण व्यवस्था भारतीय ज्ञान परम्परा की अत्यंत संगठित, अनुशासित एवं मूल्यप्रधान प्रणाली का परिचायक है। इस शिक्षा–पद्धति का मूल उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि चरित्र–निर्माण, आत्मसंयम, सदाचार एवं आध्यात्मिक उन्नति था। गुरुकुल प्रणाली इस शिक्षण व्यवस्था का प्रमुख आधार थी, जहाँ विद्यार्थी गुरु के सान्निध्य में निवास कर वेदाध्ययन, गुरु सेवा, अग्नि पूजा, भिक्षाटन तथा आत्मानुशासन का अभ्यास करते थे। पुराणों में गुरु एवं शिष्य के सम्बन्धों का युक्तियुक्त विवेचन प्राप्त होता है, जिससे स्पष्ट होता है कि शिक्षा को जीवनोपयोगी एवं व्यवहारिक स्वरूप प्रदान किया गया था। ब्रह्मचर्य को शिक्षा का अनिवार्य अंग माना गया तथा उपनयन संस्कार के माध्यम से विद्यार्थी को अनुशासित जीवन में प्रवेश कराया जाता था। स्मृतियों एवं धर्मसूत्रों में विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के कर्तव्यों, सामाजिक मर्यादाओं तथा आचार–संहिताओं का विस्तृत वर्णन मिलता है, जो उस समय की सुव्यवस्थित शिक्षण परम्परा को प्रमाणित करता है। पुराणों ने आचार–विचार की पवित्रता, दम, संयम, नियम एवं अस्तेय जैसे नैतिक मूल्यों पर विशेष बल दिया तथा प्रमाद, आलस्य एवं दुष्कर्म से दूर रहकर सत्कर्म की ओर प्रवृत्त होने की प्रेरणा दी। इस प्रकार पुराणों एवं स्मृतियों की शिक्षण व्यवस्था व्यक्ति के बौद्धिक विकास के साथ–साथ उसके नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक परिष्कार की भी समर्थ वाहक थी।

3.2 स्त्री शिक्षा एवं सामाजिक दृष्टि

पुराणों एवं स्मृतियों में स्त्री शिक्षा के प्रति एक विशिष्ट एवं बहुआयामी दृष्टिकोण प्राप्त होता है। यद्यपि उत्तरवैदिक एवं स्मृति काल में सामाजिक संरचना अधिक मर्यादाबद्ध एवं संस्कारप्रधान हो गई थी, तथापि स्त्रियों की शिक्षा को पूर्णतः उपेक्षित नहीं किया गया। स्त्रियाँ अपने घरों पर ही शिक्षा प्राप्त करती थीं तथा उनके पिता अथवा आचार्य उन्हें शिक्षित करते थे। इससे स्पष्ट होता है कि स्त्री शिक्षा की परम्परा समाज में विद्यमान थी, यद्यपि उसका स्वरूप गुरुकुलीय शिक्षा से भिन्न था। स्त्रियों को मुख्यतः नैतिकता, धर्म, परिवार–व्यवस्था, कला, संगीत, नृत्य तथा व्यवहारिक ज्ञान से सम्बद्ध शिक्षाएँ प्रदान की जाती थीं। उपवेदों एवं लौकिक विद्याओं जैसे संगीत, अभिनय, नृत्यकला तथा गृह–व्यवस्था के अध्ययन में स्त्रियों की सहभागिता का उल्लेख भी स्मृतियों में प्राप्त होता है।

सामाजिक दृष्टि से पुराणों एवं स्मृतियों ने स्त्री को परिवार एवं समाज की मर्यादा का आधार माना। स्त्री के आचार, शील, संयम एवं नैतिक जीवन को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया। स्मृति–साहित्य में वर्णित सामाजिक मर्यादाएँ उस समय की सांस्कृतिक एवं धार्मिक मान्यताओं को प्रतिबिम्बित करती हैं, जिनका उद्देश्य समाज में अनुशासन एवं संतुलन बनाए रखना था। यद्यपि कालान्तर में बाल–विवाह एवं सामाजिक बन्धनों के कारण स्त्री शिक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा, फिर भी भारतीय

© 2026 The Academia

The Academia
(A Multidisciplinary Peer-Reviewed Research Journal)
Volume: 04, Issue: I, Pages: 62-70, Year: 2026
ISSN- 2583-8830

परम्परा में स्त्री को ज्ञान, संस्कार एवं संस्कृति की संवाहिका के रूप में स्वीकार किया गया। पुराणों में वर्णित मातृत्व, पतिव्रत धर्म, करुणा, त्याग एवं सदाचार जैसे आदर्श स्त्री के नैतिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप को प्रतिष्ठित करते हैं। इस प्रकार पुराणों एवं स्मृतियों में स्त्री शिक्षा की अवधारणा केवल औपचारिक ज्ञान तक सीमित न होकर सामाजिक मर्यादा, सांस्कृतिक संरक्षण एवं नैतिक मूल्यों के संवर्धन से भी गहराई से सम्बद्ध थी।

3.3 पुराण एवं स्मृतियों का दार्शनिक आधार

भारतीय ज्ञान परम्परा में पुराण एवं स्मृतियाँ केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं, बल्कि भारतीय दर्शन, संस्कृति, नैतिकता एवं शिक्षा–दृष्टि के महत्वपूर्ण आधार हैं। इनमें धर्म, कर्म, मोक्ष एवं आत्मा जैसे दार्शनिक तत्त्वों का गम्भीर एवं व्यावहारिक विवेचन प्राप्त होता है। मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में धर्म को मानव जीवन की मर्यादा, सामाजिक संतुलन एवं कर्तव्यपालन का आधार माना गया है, जबकि पुराणों में धर्म को परोपकार, सदाचार एवं मानवता से जोड़ा गया है–"परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम्।" कर्म सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य अपने कर्मों के अनुरूप ही फल प्राप्त करता है; इसी कारण पुराणों एवं स्मृतियों में सत्कर्म, संयम एवं नैतिक जीवन पर विशेष बल दिया गया है। भारतीय दर्शन में मोक्ष को परम पुरुषार्थ माना गया है, और पुराणों में योग, भक्ति, ज्ञान एवं सदाचार को मोक्ष प्राप्ति का साधन बताया गया है। साथ ही आत्मा को शाश्वत एवं परमात्मा का अंश स्वीकार करते हुए आत्मबोध एवं आत्मानुशासन की भावना को महत्व दिया गया है। इस प्रकार पुराण एवं स्मृतियाँ भारतीय शिक्षा–दर्शन को नैतिकता, आध्यात्मिकता एवं मूल्यपरक जीवन–दृष्टि से समृद्ध करती हैं।

4. आधुनिक संदर्भ में पुराण एवं स्मृतियों की प्रासंगिकता–

वर्तमान वैश्विक एवं तकनीकी युग में शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यावसायिक दक्षता प्राप्त करना नहीं रह गया है, बल्कि व्यक्तित्व के समग्र विकास, नैतिक चेतना, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना भी शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य बन गया है। इसी संदर्भ में भारतीय ज्ञान परम्परा पर आधारित पुराण एवं स्मृतियाँ आज भी अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होती हैं। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में जो नैतिक, आध्यात्मिक एवं मानवीय मूल्यों का संकट दिखाई देता है, उसका समाधान इन ग्रन्थों में निहित शिक्षा–दृष्टि से प्राप्त किया जा सकता है। मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णित आचार, अनुशासन, कर्तव्यबोध एवं सामाजिक मर्यादा आज भी मानव जीवन को संतुलित एवं संस्कारित बनाने में सहायक हैं। भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान परम्परा, नैतिक शिक्षा, मातृभाषा आधारित अध्ययन तथा मूल्यपरक शिक्षण पर विशेष बल दिया गया है। यह नीति विद्यार्थियों में केवल बौद्धिक विकास ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक चेतना, नैतिक उत्तरदायित्व एवं भारतीयता की भावना विकसित करने का प्रयास करती है। पुराणों एवं स्मृतियों में वर्णित गुरु–शिष्य परम्परा, आत्मानुशासन, संयम, सदाचार तथा लोककल्याण की अवधारणाएँ नई शिक्षा नीति के मूल उद्देश्यों से सामंजस्य रखती हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा को शिक्षा के साथ जोड़ने का उद्देश्य विद्यार्थियों को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से परिचित कराना तथा उनमें मानवीय संवेदनाओं का विकास करना है।

आधुनिक समाज में मूल्य आधारित शिक्षा की आवश्यकता निरन्तर बढ़ती जा रही है। भौतिकवाद, प्रतिस्पर्धा एवं नैतिक पतन के इस दौर में पुराण एवं स्मृतियाँ मानव को सत्य, अहिंसा, परोपकार, संयम एवं आत्मसंयम जैसे मूल्यों की शिक्षा प्रदान करती हैं। पद्म पुराण में परोपकार को सर्वोच्च पुण्य तथा परपीड़ा को पाप बताया गया है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण में भक्ति, करुणा एवं लोकमंगल की भावना को मानव जीवन का आदर्श माना गया है। ये शिक्षाएँ विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण एवं नैतिक विकास में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। सामाजिक समरसता एवं नैतिकता की दृष्टि से भी पुराण एवं स्मृतियों का विशेष महत्व है। इन ग्रन्थों में मानव मात्र के प्रति समानता, दया, सह–अस्तित्व एवं समन्वय की भावना व्यक्त की गयी है। पुराणों में यह स्पष्ट कहा गया है कि सभी प्राणी एक ही परमात्मा के अंश हैं, अतः जाति, वर्ग एवं ऊँच–नीच का भेद मानव निर्मित है। यह विचार आधुनिक लोकतांत्रिक एवं समतामूलक समाज की अवधारणा को सुदृढ़ करता है। साथ ही, सामाजिक कर्तव्यों, पारिवारिक मर्यादाओं तथा नैतिक आचरण पर दिया गया बल वर्तमान समाज में बढ़ती असंवेदनशीलता एवं विघटन की प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने में सहायक हो सकता है। अतः स्पष्ट है कि पुराण एवं स्मृतियों में निहित शिक्षा एवं ज्ञान की अवधारणाएँ केवल प्राचीन भारतीय समाज तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे आधुनिक शिक्षा,

© 2026 The Academia

The Academia
(A Multidisciplinary Peer-Reviewed Research Journal)
Volume: 04, Issue: I, Pages: 62-70, Year: 2026
ISSN- 2583-8830

नैतिकता एवं सामाजिक समरसता के लिए भी समान रूप से उपयोगी एवं प्रासंगिक हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा पर आधारित यह दार्शनिक दृष्टि आज के युग में मूल्यपरक एवं मानवीय शिक्षा की सशक्त आधारभूमि प्रस्तुत करती है।

5. निष्कर्ष

पुराण एवं स्मृतियाँ भारतीय ज्ञान परम्परा के महत्वपूर्ण स्रोत हैं, जिनमें शिक्षा एवं ज्ञान की अवधारणा केवल बौद्धिक विकास तक सीमित न होकर नैतिकता, आत्मानुशासन, चरित्र–निर्माण तथा आध्यात्मिक उन्नति से जुड़ी हुई है। इन ग्रन्थों में गुरु–शिष्य परम्परा, ब्रह्मचर्य, सदाचार, धर्म, कर्म एवं मोक्ष जैसे सिद्धान्तों के माध्यम से आदर्श जीवन की शिक्षा दी गयी है। पुराणों एवं स्मृतियों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा–पद्धति का उद्देश्य मनुष्य को केवल विद्वान बनाना नहीं, बल्कि उसे संस्कारित, उत्तरदायी एवं नैतिक व्यक्तित्व प्रदान करना था। वर्तमान समय में मूल्यहीनता एवं सामाजिक विघटन की परिस्थितियों में इन ग्रन्थों में निहित शिक्षा–दर्शन अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होता है। नई शिक्षा नीति 2020 में भी भारतीय ज्ञान परम्परा एवं मूल्यपरक शिक्षा पर दिया गया बल इसकी समकालीन उपयोगिता को सिद्ध करता है। अतः पुराण एवं स्मृतियों में निहित शिक्षा एवं ज्ञान की अवधारणाएँ आज भी समाज एवं शिक्षा–जगत के लिए प्रेरणास्रोत हैं।

6. संदर्भ सूची

1. भारतीय ज्ञान परंपरा में पुराणों एवं स्मृतियों का सांस्कृतिक एवं दार्शनिक महत्त्व", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इनोवेटिव रिसर्च एंड मल्टीडिसिप्लिनरी स्टडीज (IJIERM), उपलब्ध–(IJIERM Journal Article)(https://journal.ijierm.co.in/index.php/ijierm/article/view/2848?utm_source=chatgpt.com)
2. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग–1, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, 2017, पृ. 32।
3. पी. वी. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास (History of Dharmasastra), खण्ड–2, भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1941, पृ. 298।
4. ए. एस. आल्टेकर, प्राचीन भारत में शिक्षा (Education in Ancient India), नंद किशोर एंड ब्रदर्स, वाराणसी, 1944, पृ. 87–95।
5. आर. सी. मजूमदार, प्राचीन भारत, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1977, पृ. 210।
6. एस. एन. दासगुप्त, भारतीय दर्शन का इतिहास, खण्ड–1, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1922, पृ. 41।
7. यही लक्षण किञ्चित् पाठ भेद से या ऐक्यरूपेण इन पुराणों में प्राप्त होता है–विष्णु पुराण 3/6/24, मार्कण्डेय 134/13, अग्नि 1/14, भविष्य 2/5, ब्रह्मवैवर्त 133/6, वाराह 2/4, स्कन्द पुराण (प्रभास खण्ड, 2/84), कूर्म (पूर्वार्ध 1/12) मत्स्य 53/64, गरुड़ (आचार काण्ड 2/28) ब्रह्माण्ड (प्रक्रियापाद 1/38) शिव पुराण (वायवीय सहिता 1/41) ।
8. विष्णु 1/2/25
9. भागवत (3/10/14) मे प्रलय के लिए प्रयुक्त प्रति संकम शब्द प्रतिसर्ग के समान ही संकम (सर्ग) से विपरीत तत्व का द्योतक है–
काल–द्रव्य–गुणैरस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः ।।
विष्णु पुराण का "प्रतिसचर" शब्द इसी शैली का शब्द है ।
10. भागवत, 12/7/16
11. भागवत, 12/7/15
12. भागवत, 12/7/16
13. एतच्छ्रुत्वा रह सूतो राजानभिदमबर्वीत् ।
श्रूयता यत् पुरावृत्तं पुराणेषु मया श्रुतम ।। – वाल्मीकीय रामायण–बालकाण्ड
14. सत्येन संस्थितो विंध्यः प्रबन्धंनातिवर्तते ।
स्वर्गापवर्गनरका सत्यवाचि प्रतिष्ठता ।। – पद्म पुराण भाग एक सृष्टि–खण्ड 11/110

© 2026 The Academia

The Academia
(A Multidisciplinary Peer-Reviewed Research Journal)
Volume: 04, Issue: I, Pages: 62-70, Year: 2026
ISSN- 2583-8830

15. सुकर्मधर्मार्जितजीविताना सदा च संतुष्य गृहे रतानाम् ।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि धर्मो नियम स्थितानाम् ।। पद्म पुराण 12/142
16. सस्कारं केशदन्तानां प्रातरेव समाचरेत् ।
गुरूणा च नमस्कार नित्यमेव समावरेत् ।। पद्म पुराण, भाग–एक–231/12
17. दममेव प्रक्ष्यामि तवाग्रे द्विजसत्तम ।
दमनादिन्द्रियाणा वै मनसोऽपि विकारिणः।। – पद्मपुराण भाग–एक, 33/27
18. एतएव त्रयोवेदा एतएव त्रयोग्नयः।
एतएव त्रयोवेदा एतएव त्रयोगुणः ।।
19. अष्टादशपुराणानां वक्ता सत्यवती सुतः। – शिवपुराण रेवाखण्ड ।
20. कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः।
यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्य युगे युगे।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ।
तदष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन प्रकाशितम् ।। पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड, अ० 1/51, 52
21. आचारल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते सुखम् ।
आचारोत्स्वर्गेममोक्षं च आवारोहन्त्य लक्षणम् ।।
अनाचारों हि पुरूषः लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽपायुरेव च ।। पद्म पुराण, /1–23/2.3
22. नक. कस्य भवेत्पुत्रो न माता न पिता शुभे ।
न भ्राता बन्धवः कस्य न च स्वजनबान्धवः ।
एवं ससारसम्बन्धो माया मोहसमन्वितः ।।– पद्मपुराण, भूमिखण्ड (2) अ० 30/2.3
23. कृषिकारो यदा देविच्जन्नं बीजं सुसंस्थितम् ।
यादृशं तु भवत्येवत दृशं फलनश्नुत ।। – वही, अ० 30/6
24. यथा घटसहस्त्रेषु सोदकेषु विराजते।
एकश्चन्द्रो हि सर्वत्र भवास्तद्विराजते।। – पद्म पुराण भूमिखण्ड 31/41, 42, 47
25. दयादापरो नित्यं जीवमेव प्ररक्षेयत्। वही, 36/38
26. परोपकारसदृशो नास्ति धर्मोऽपरः खलु। – शिवपुराण. 1– विद्येश्वरसंहिता 1/36
27. सहस्त्रयुगपर्यन्ततद्ब्रहिमुच्यते ।
ततोऽनिगदत तस्मिसर्वेषामेव जीविनाम् ।। वही, 1–17/26
28. महाप्रलयकाले च नष्टे स्थावरजंगमे।
आसीत्तमोमयं सर्वममर्कग्रहतारकम् ।। – पद्मपुराण, रुद्रसंहिता सृष्टि खण्ड 3/4
29. ब्रह्माण्ड पुराण, (आ० 66–62 तक)
30. वेदार्थदधिकं मन्ये पुराणार्थ वरानने, नारदीय पुराण, 2/24/1

Corresponding Author:
विनोद कुमार
शोधार्थी,
प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
Email: omkarbharti1987@gmail.com

© 2026 The Academia